

ग्रामसभाओं के निर्णय का सम्मान आवश्यक



भारत के ग्रामीण लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण इकाई ग्राम सभा मानी जाती है। संविधान के 73वें संशोधन (1992) ने ग्राम सभाओं को स्थानीय स्वशासन का आधार बनाया, ताकि विकास संबंधी निर्णय ग्रामीण समुदाय स्वयं ले सके। लेकिन ग्रामीण विकास मंत्रालय के हालिया सर्वेक्षण पर आधारित एक रिपोर्ट संकेत देती है कि व्यवहार में ग्राम सभाएँ अपने वास्तविक उद्देश्य से दूर होती जा रही हैं।

रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीणों में "भागीदारी की कमी" की भावना बढ़ रही है, जिसके कारण ग्राम सभाओं में लोगों की उपस्थिति घट रही है। सरकार इसका समाधान अधिक बैठकों और कड़ी निगरानी में देखती है, जबकि वास्तविक समस्या कहीं अधिक गहरी है।

भागीदारी क्यों घट रही है?

रिपोर्ट बताती है कि 18-28% उत्तरदाताओं ने ग्राम सभाओं में रुचि कम होने का कारण बैठकों से कोई ठोस परिणाम न निकलना बताया। इसके बावजूद समाधान के रूप में एनआईआरएनएफ (NIRNF) या निर्णय ऐप के अधिक उपयोग और बैठक की कार्यवाही को रियल-टाइम में अपलोड करने की सिफारिश की गई है।

संपादकीय के अनुसार यह समाधान व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि—

- पंचायत सचिवों का अधिक समय डिजिटल औपचारिकताओं में खर्च होगा।
- ग्रामीणों की समस्याओं पर चर्चा के लिए समय और कम बचेगा, तथा

- डिजिटल निगरानी तो बढ़ेगी, लेकिन निर्णय लेने की गुणवत्ता नहीं।

उदाहरण के तौर पर, मनरेगा (MGNREGA) में कई बार अधिकारियों द्वारा मजदूरों को यह कहकर टाल दिया जाता है कि उनकी मांग "सिस्टम में दर्ज नहीं हो पाई", क्योंकि सर्वर काम नहीं कर रहा था। इससे तकनीकी जवाबदेही बढ़ने के बजाय बहाना बन जाती है।

आजीविका सबसे बड़ी बाधा -

- रिपोर्ट के अनुसार ग्राम सभाओं में भागीदारी की आधे से अधिक बाधाएँ लोगों की आजीविका से जुड़ी हैं।
- संपादकीय का तर्क है कि इसका अर्थ केवल यह नहीं कि लोग व्यस्त हैं, बल्कि यह भी हो सकता है कि—
 - ग्रामीण रोजगार अस्थिर हो गया है।
 - गरीब मजदूर बैठक में आने की आर्थिक कीमत नहीं उठा सकते, तथा
 - सरकार ने ग्राम सभा में भागीदारी को सामाजिक सुरक्षा या भुगतान योग्य गतिविधि का हिस्सा नहीं बनाया।

परिणामस्वरूप ग्राम सभाएँ अक्सर उन लोगों के प्रभाव में आ जाती हैं, जिनके पास समय और संसाधन हैं, जैसे जमींदार, ठेकेदार और स्थानीय प्रभावशाली वर्ग।

ग्राम पंचायतों की वित्तीय स्वायत्तता कमजोर -

- रिपोर्ट बताती है कि ग्राम सभाएँ अपने समय का केवल 4% हिस्सा राजस्व बढ़ाने पर चर्चा करती हैं, जबकि 13% समय स्थानीय समस्याओं की पहचान में जाता है।
- संपादकीय का कहना है कि इसका मुख्य कारण यह है कि ग्राम पंचायतों को स्वयं कर लगाने और राजस्व जुटाने की पर्याप्त स्वतंत्रता नहीं है। वे मुख्यतः केंद्र और राज्य सरकारों के अनुदानों पर निर्भर हैं।
- इसके अलावा, 14वें और 15वें वित्त आयोग के अनुदानों को पेयजल, स्वच्छता तथा जल जीवन मिशन और स्वच्छ भारत मिशन जैसी केंद्रीय योजनाओं से जोड़ दिया गया है। इससे स्थानीय प्राथमिकताओं के अनुसार धन खर्च करने की स्वतंत्रता सीमित हो गई है।

- यदि अधिकांश धन का उपयोग पहले से तय है, तो ग्रामीणों को ग्राम सभा में आने का प्रोत्साहन भी कम हो जाता है।

पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) कानून (PESA), 1996 -

- रिपोर्ट का दावा है कि पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 (PESA) वाले क्षेत्रों में आधारभूत ढाँचा अपेक्षाकृत बेहतर है।
- संपादकीय याद दिलाता है कि PESA और वनाधिकार कानून के तहत ग्राम सभाओं को भूमि अधिग्रहण, खनन और अन्य परियोजनाओं पर पूर्व एवं सूचित सहमति (Free, Prior and Informed Consent) देने या अस्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है।

लेकिन व्यवहार में अनेक मामलों में सरकारें—

- ग्राम सभाओं को दरकिनार कर देती हैं।
- या कम उपस्थिति का हवाला देकर कृत्रिम सहमति दिखा देती हैं।

छत्तीसगढ़ के हसदेव अरण्य में खनन विरोधी आंदोलन भी इसी प्रश्न से जुड़ा रहा है कि ग्राम सभाओं की वास्तविक सहमति का सम्मान किया जाए।

निष्कर्ष स्पष्ट है कि लोकतंत्र का अर्थ केवल "हाँ" कहलवाना नहीं है। यदि ग्राम सभा को केवल सरकारी योजनाओं की औपचारिक स्वीकृति देने वाली संस्था बना दिया जाए, तो उसकी संवैधानिक भूमिका समाप्त हो जाती है।

ग्राम सभाओं को विकास परियोजनाओं पर "हाँ" या "ना" दोनों कहने का वास्तविक अधिकार मिलना चाहिए। सरकारों को उनके निर्णयों का सम्मान करना होगा। तभी 73वें संविधान संशोधन की भावना और जमीनी लोकतंत्र दोनों मजबूत हो सकेंगे।

'द हिन्दू' में प्रकाशित संपादकीय पर आधारित। 02/07/26